P. G. (Sanskrit) Sem. III

CC-XI, Unit-II

(काव्यप्रकाश). गुणालङ्कार का भेद प्रतिपादन

By

Dr. Sanjay Kumar Chaubey

(Assistant professor)

Dept. of Sanskrit

H.D. Jain college, Ara

Scanned by CamScanner

प्र० 'काव्य प्रकाश' के अनुसार गुणालङ्कार भेद स्पष्ट कीजिये।

उत्तर: —

वाग्देवतानतार आचार्य मम्मट ने प्राचीन आचार्यों के गुण तथा अलंकार सम्बन्धी मतों की सम्यक् समीक्षा करके काव्यप्रकाश के अष्टम उल्लास में गुण और अलङ्कार का स्वरूप प्रतिपादित किया है

गुण का स्वरूप :— आचार्य मम्मट के अनुसार —

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥

अर्थात् जैसे शूरत्व, वीरत्व आदि शरीर के न होकर आत्मा के धर्म हैं उसी प्रकार काव्य के आत्मभूत प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं अर्थात् माधुर्यादि गुण वस्तुतः रस के ही धर्म होते हैं वर्णों के नहीं — 'आत्मन एव हि यथा शौर्यादयो नाकारस्य तथा रसस्यैव माधुर्यादयो गुणा न वर्णानाम्'।

गुण रस के उत्कर्षाधायक हैं अर्थात् ~~चित्तद्रुति~~ चित्तद्रुति आदि कार्यविशेष के उत्पादक हैं किन्तु रस के उत्कर्ष हेतु अर्थात् उपकारक तो अलंकार भी हैं अतः अलङ्कारों से वैधर्म्य प्रदर्शन के लिये दो विशेषण दिये गये हैं —

अङ्गिनः रसस्य धर्माः :— जिस प्रकार शौर्यादि जीवात्मा के धर्म हैं अचेतन शरीर के नहीं उसी प्रकार गुण भी काव्य में प्रधानतया स्थित अर्थात् अङ्गी रस के धर्म हैं शरीररूप शब्दार्थ के नहीं। अत एव शब्दार्थयुगल के धर्मरूप अलंकारों से गुण अवश्य ही भिन्न हैं।

अचलस्थितयः :— अभिप्राय है कि रस के साथ गुणों की स्थिति 'अचला' अर्थात् निश्चित या अव्यभिचारीरूप से है। ('अचला स्थितिः येषां ते स्थायिनः')। इस नियत स्थिति के दो तात्पर्य हैं — एक तो यह है कि रस के साथ स्थित होकर वे रस के उपकारक ने अवश्य होते हैं।

अलंकार का स्वरूप :— उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥

महाकाव्य।

Scanned by CamScanner

अर्थात् जो काव्य में विद्यमान अङ्गी रस के शब्दार्थरूप अङ्गों के द्वारा कभी-कभी उपकृत करते हैं वे अनुप्रास और उपमा आदि अलङ्कारों के समान काव्य के अलंकार होते हैं।

काव्य में अलंकार की स्थितियाँ तीन प्रकार से होती हैं —

1. कहीं-कहीं कण्ठादि अङ्गों के उत्कर्षाधान द्वारा शरीर की भी परम्परया उत्कर्षाधायक हारादि के समान शब्दार्थ रूप अङ्गों के उत्कर्षद्वारा काव्य में विद्यमान रस को उपस्कृत करते हैं।

2. जहाँ रस नहीं होता वहाँ उक्तिवैचित्र्यमात्र प्रतीत होते हैं "यत्र तु नास्ति रसस्तत्र उक्तिवैचित्र्यमात्रपर्यवसायिनः।"

3. कहीं-कहीं काव्य में रस के होने पर भी उसके उत्कर्षाधायक न होते — "क्वचित्तु सन्तमपि नोपकुर्वन्ति"

अलङ्कारों का स्वरूप गुणों से भिन्न होता है। जिन्हें हम दो बिन्दुओं में देख सकते हैं।

क. अलङ्कार अङ्ग अर्थात् रस व्यञ्जना के उपकरणरूप शब्दार्थ में उत्कर्ष स्थापित करते हुये रस के उत्कर्षक हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे हारादि आभूषण कण्ठादि की शोभा बढ़ाते हुये कामिनी सौन्दर्य के वर्धक हो जाते हैं। अतः ये रस के धर्म नहीं हैं तथा रस धर्मरूप गुणों से पृथक् हैं "अङ्गाश्रितत्वेन रसधर्मत्वं निरस्तम्" (काव्यप्रकाश)

ख. ये अलङ्कार नियमपूर्वक रस के धर्म नहीं होते। प्रथम यह कि ये रस के विद्यमान होने पर भी रसोत्कर्षक होते हैं अन्यथा उक्ति चमत्कार मात्र दिखाकर रह जाते हैं। दूसरी बात यह कि कहीं-कहीं रस के विद्यमान होने पर भी उसका उपकार नहीं करते। अतः ये अनियत स्थिति वाले हैं तथा गुणों से भिन्न हैं।

→

गुणालङ्कारभेद :—

1. रस के आश्रित धर्म गुण रसोत्कर्षहेतुत्वे सति रसधर्मत्वम्	1. शब्दार्थ के आश्रित धर्म अलंकार हैं ये रस के धर्म नहीं हैं (रसोपकारकत्वे सति रसावृत्तित्वम्)
2. ये नियम से रस के साथ ही रहते हैं रस के बिना नहीं— (रसाभिचारि स्थितित्वम्)	2. ये रस के साथ अनिवार्य रूप से नहीं रहते, रस के न होने पर भी हो सकते हैं (रसव्यभिचारित्वम्)
3. गुण नियमतः होकर रस को अवश्य उपकार करते हैं — (अयोगव्यवच्छेदेन रसोपकारकत्वम्)	3. अलंकार कभी रस के उपकारक होते हैं कभी नहीं भी होते — 'अनियमेन रसोपकारकत्वम्'
4. गुण रस के साक्षात् उपकारक होते हैं	4. अलंकार शब्दार्थ के माध्यम से परम्परया रस के उपकारक होते हैं।

निष्कर्ष :— इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि ओज प्रसादादि गुण काव्य में अनिवार्य रूप से अचल स्थिति से रहते हैं। ठीक इसके विपरीत अनुप्रासोपमादि अलंकार काव्य में अनिवार्य रूप से नहीं रहते। अतः आचार्य मम्मट के मतानुसार गुणों का स्थान अलङ्कारों की अपेक्षा अधिक है।

—x—

Scanned by CamScanner